ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(2): 342-344
www.allresearchjournal.com
Received: 01-12-2018
Accepted: 06-01-2019

आर एन त्रिपाठी
प्रोफ़ेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिंदू विश्व विद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author:
आर एन त्रिपाठी
प्रोफ़ेसर, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिंदू विश्व विद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

समाजीकरण में योग का समन्वय एवं उसके विविध स्वरूप

आर एन त्रिपाठी

DOI: https://www.doi.org/10.22271/allresearch.2019.v5.i2c.12839

सारांश
एक नवजात शिशु हांड मांस के लोथड़े के रूप में मात्र जैविक उत्पाद होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया से वह पूर्ण मनुष्य बनता है। समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण हैं और उन अभिकरणों के माध्यम से ही व्यक्ति को सामाजिक प्राणी के रूप में जीने के पूर्णता प्राप्त होती। जैविक एवं मानसिक रूप से स्वास्थ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसे जन्म के बाद योग की क्रिया से प्राप्त किया जा सकता है।जिसका वर्णन हमारे प्राच्य ग्रंथों में विषद रूप से मिलता है। हमारे ऋषियों मनीषियों ने इसे बहुत पहले जान लिया था और इसके विविध स्वरूपों का समुचित अध्ययन कर उसे मानवोपयोगी बनाने की शिक्षा शुरू कर दी थी आज आवश्यकता है समाजीकरण के प्राथमिक अभिकरण है घर, परिवार, विद्यालय, अध्यापक सभी को योग की शिक्षा प्रारंभिक तौर पर लेनी चाहिए और देनी चाहिए क्योंकि स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही संभव है, और किसी भी देश की पूंजी उसके सुयोग्य नागरिक ही हैं।इस शोध पत्र में योग के विभिन्न स्वरूपों का और योग की ऐतिहासिक उपादेयता पर विचार किया गया है।

कुटशब्द: नवजात शिशु, समाजीकरण, योग क्रिया, मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य, ऐतिहासिक उपादेयता

प्रस्तावना

हमारे पूर्वजों ने मानव मन के सुख शांति की विविध उपायों सोचा, समझा और अपनाया और अंतत
वे सत्य, शाश्वत, सार्वभौमिक, सार्वजनिक, सरल, सुलभ, पथ की तलाश करने और उसे प्राप्त करने के लिए जो विभिन्न मार्ग बताएं, जिनका अवलंबन करके मनुष्य चाहे वह साधन संपन्न हो अथवा साधनहीन हो सबल हो या निर्बल हो सभी लोग सहज रूप से सच्चा सुख और शांति प्राप्त कर सकते हैं,वह योग ही है।मन की इच्छाओं और जिज्ञासाओं की पूर्ति करते रहने से तृष्णा और बलवती हो जाती है, सुख और शांति बहुत दूर भागती चली जाती है। सच्चा सुख,और असीम शांति किसी प्रकार के आमोद प्रमोद और मन रंजन से नहीं मिल सकती,हमारे ऋषियों ने उसको दमन करने, कामनाओं और लालसाओं को न्यूनतम करने की बात कही है क्योंकि ज्यों ज्यों यह कामना बढ़ती है तृष्णा बढ़ती चली जाती है और तृष्णा बढ़ने से मानव जीवन में असंतोष और अशांति स्वयं बिना बुलाये चली आती है। मन की अभिलाषा अनिश्चित है उस पर स्थिरता नहीं मिल सकती और ना उनकी पूर्ति ही की जा सकती है क्योंकि मानव मन अनंत एवं असीम अभिलाषाओं का भोक्ता होता है वह सदा उसी से सुखी और संतुष्ट बनने की बात सोचता है। यदि धन, संपन्नता, वैभव, मकान, अट्टालिका, विभूति, गाड़ियां और भौतिकता के समस्त उपादान के संचय कर लेने से मनुष्य सुख का अधिकारी बनता तो आज अमेरिका जैसे देश को इतने ज्यादा मनोचिकित्सक की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि संपन्नता उनके पास है परंतु मानसिक विपन्नता उनकी दूर ही नहीं हो रही है,वो सब अशांत हैं क्योंकि वह भारत के योग के महत्व को नहीं जान पाए हैं। मानव मन की व्यवस्था के विपरीत वितृष्णा उसे वास्तविक शांति की मार्ग से भटकाती है और शोक और संघर्षों का जन्म देती रहती है,यदि ऐसा न होता तोआज वह हथियार के व्यापार हेतु हर जगह युद्ध की छद्म रचना नहीं प्रस्तुत करता। मनुष्य इस मृत्युलोक का एक सांसारिक प्राणी है वह सुख प्राप्त के लिए सदैव सतत प्रयासरत रहता है परंतु हमारे ऋषियों ने जो सबसे बड़े मनोवैज्ञानिक भी थे उन्होंने उस सुख की प्राप्ति के लिए कामनाओं का निर्मूलन करने के लिए,किसी अभाव से मन में शांति लाने के लिए, वासनाओं और समय काल जनित बाधाओं का शमन करने के लिए योग की आवश्यकता बताई है।यह योग क्या है इसका विवरण निम्न है।

हमारे यहां अथर्ववेद में एक श्लोक आता है "योगम प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं" [1] अर्थात हे ईश्वर हमें योग के द्वारा क्षेमं यानी रक्षा, और रक्षा द्वारा योग को प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करो।यही मनुष्य के लिए कामना की गई है, वेद को आधार बनाकर के लिखे गए साहित्य में योग के सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया गया है योग को विभिन्न ग्रन्थों में ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, साहित्य, पतंजलि योग दर्शन,आदि में विस्तृत उल्लेख है। हमारे जीवन दर्शन के छः दर्शनों में योग दर्शन अर्थात योग का सिद्धांत मूलतः सबसे जीवन उपयोगी सिद्धांत हैं। हमारे देश में योग की दो परंपराएं थी पहले 'ब्रह्मयोग' दूसरा कर्मयोग। ब्रह्म योग की परंपरा सनक,सनंदन, सनातन, कपिल आसुर,पंचशिख, नारद आदि ऋषियों ने प्रारंभ की थी उस ब्रह्म

योग की स्थापना स्थापना ज्ञानयोग, सांख्ययोग आध्यात्म योग आदि के नाम से जानी जाती है। कर्म योग की परंपरा को भगवान भी विवस्वान ने शुरू किया उन्होंने ने मनु को दिया मनु ने इच्छवाकु को दिया और इछवाकू ने राज्यों और प्रजा को योग का उपदेश दिया।

वर्तमान में प्रचलित योग परंपरा में शिव को प्रथम योगी माना जाता है। शिव ने सप्त ऋषियों को योग का ज्ञान दिया, इस प्रकार संपूर्ण भूमंडल पर योग का ज्ञान फैला। महाभारत से पूर्व समस्त योग की परंपरा को महर्षि पतंजलि ने एक सूत्र में प्रयोग करके योग के महत्व को स्थापित किया। शाब्दिक दृष्टि से योग शब्द संस्कृत की यजु धातु से बना है जिसका मतलब जोड़ना होता है जब जीवात्मा अपने चित्त की वृत्तियों को रोक लेता है तथा अपने स्वरूप में स्थित होकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है तो वही योग कहलाता है। सांख्यदर्शन में पुरुष एवं प्रकृति के पार्थक्य को स्थापित करके पुरुष का स्व स्वरूप में अवस्थित होना योग कहलाता है। इन सब में महर्षि पतंजलि ने योग की बहुत ही सटीक व संक्षिप्त परिभाषा दी है 'योगाश्चितवृत्ति निरोध' यानी चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग कहलाता है। बौद्ध धर्म में भी योग की परिभाषा दी गई है, कुशलचितत्यकाग्रत्ता योग:अर्थात कुशलता से चित्त को एकाग्र करना योग है। महर्षि पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों को शमन करने को केंद्र में रखकर के मूलतः योग सूत्र को चार भागों में विभाजित किया है। पहला भाग है 'समाधिपाद' इसमें एकाग्र चित्र वाले प्रौढ़ साधक को योग का उपदेश दिया गया है दूसरा भाग है 'साधनपाद' जिसमें चित्त को एक आधार बनाने वाले साधन के रूप में तप, स्वाध्याय, और ईश्वर आराधन की बात की गई है। तीसरा है 'विभूतिपाद' जिसमें चित्त के शुद्ध सात्विक और संयमित बनाने के लिए बहिरंगरूप में यम, नियम, आदि हैं इसे अष्टांग मार्ग भी कहा जाता है। चौथा जो अति महत्वपूर्ण भाग है वह कैवल्यपाद कहलाता है जिसमें कैवल्य अर्थात मोक्ष पाने के लिए हमें पुरुषार्थ चतुष्टय के विभिन्न स्वरूपों के साथ जीवन यापन करने की बात कही गई है। इसमें जो महर्षि पतंजलि का विभूतिपाद भाग है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि अष्टांग योग के रूप में यही सामान्यतः आम जनमानस में प्रचलित है।

समाजीकरण की प्रक्रिया को शिशु एवं किशोरावस्था से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक अपनाने हेतु इस अष्टांग योग में साधन के रूप में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, और अंतरंग साधन के रूप में धारणा, ध्यान एवं समाधि का वर्णन किया गया है। अन्य विभिन्न शाखाओं के आधार पर योग के विभिन्न नाम भी हमारे भारतीय दर्शन में मिलते हैं जैसे राजयोग, सहज योग, क्रिया योग, मुद्रा योग, स्वर योग, भक्ति योग ज्ञान योग शांति योग, भावना योग,सन्यास योग, हठयोग, तंत्र योग, और मंत्रयोग। हमारे जीवन में उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की जो व्याधियां बढ़ रही हैं उन विभिन्न बाधाओं को दूर करने के लिए इन्हीं योग का सहारा लिया जाता है।

जीवन की प्रारंभिक अवस्था तदुपरांत विकास की अवस्था की पूर्णता के लिए अष्टांग योग के आठ अंगों की भी यहां चर्चा करना समीचीन है जिसमें पहला 'यम' है इंद्रियों के संयम करने की क्रिया को यम कहते हैं "जाति देशकालसमयाविच्छिन्ना: सार्वभौमामहाव्रतम" [2], अर्थात यह जाति, देश, काल और सीमा से रहित सार्वभौम महाव्रत है। यह पांच प्रकार का है, अहिंसा,सत्य, आस्था,ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहआदि दूसरा 'नियम' पतंजलि योग दर्शन कहता है "शौच सन्तोषतप: स्वाध्याये श्वेर प्रणिधानानि नियमन:" [3] अर्थात शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर शरणागति यह पांच नियम है।तीसरा 'आसन' है, ध्यान करते समय जिस अवस्था में सुखपूर्वक बैठ जा सके वही आसान कहलाता है,पद्मासन, व सिद्धासन मुख्यत:है वैसे यह पांच प्रकार का है हलासन, शीर्षासन, भुजंगासन, धनुरासन, मत्स्यायन, सर्वांगसन, कोणासनआदि। चतुर्थ मार्ग प्राणायाम, है जव आसान की सिद्धि हो जाय तो श्वास प्रश्वास की गति को रोक देना प्राणायाम कहलाता है। कहा गया है"तस्मिन सति श्वासप्रश्वास योग गतिरविच्छेद:प्राणायाम:" [4] यह प्राणायाम पूरक रेचके और कुम्भक से पूर्ण होता है। इसी प्रकार पांचवा प्रत्याहार है जिसे "स्वविष्यसम्प्रयोगे चित्तस्वरूपनुकार इवेन्द्रियानां प्रत्याहार:" [5] अर्थात इंद्रियों के अपने अपने विषय के साथ सन्निकर्ष न होने पर चित्त के व्यापार के अनुसार हो जाना ही प्रत्याहार कहलाता है। छठवीं 'धारणा' है जिसे योग दर्शन में "देशबंधशिचत्तस्य धारणा:" [6] अर्थात बाह्याभ्यांतर के स्थूल तथा सूक्ष्मरूप से किसी भी विषय मे चित्त को बांध देना ही धारणा कहलाती है। सांतवा 'ध्यान' है, धारणा में जिस चक्र, नाभि क्षेत्र में चित्त को लगाकर चित्त की वृत्ति को एकाग्रता प्रदान ध्यान कहलाता है।सातवां 'समाधि'यह ध्यान की पराकाष्ठा है जब ध्यान करते करते साधक अपने को भूल जाता है,वह क्या कर रहा है क्या नहीं कर रहा है इसी को समाधि कहते हैं, पतंजलि कहते हैं" तदेवार्थ मात्र निर्भाष स्वरूपशून्यमिव समाधि:" [7] जब योगी केवल ध्येय रूप में स्थिति होता प्रतिभाषित होता है वह 'समाधि' कहलाती है। वैसे यह भी दो प्रकार की होती है, सम्प्रज्ञात समाधि,दूसरी असम्प्रज्ञात समाधि।

सुयोग्य ढंग से इसके संपादन के लिए श्रीमद्भगवगीता के अध्याय 6 के 11वें श्लोक में स्पष्ट कहा है की"शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिर्मसंमात्मान:।
नात्युच्छिर्तं नाति नीचं चैलाजिन कुशोउत्तरम।। [8] अर्थात शुद्ध पवित्र भूमि पर कुश मृगछाला या जो आसान उपलब्ध हो जो ना बहुत ऊंचा हो और ना बहुत ही नीचा हो ऐसा स्थिर आसान स्थापित करके उस आसन पर बैठकर चित्त और इंद्रियों की क्रियाओं को बस में रखते हुए मनको एकाग्र करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करता है वही साधक है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि काया, सिर और गले को समान अचल धारण करके स्थिर होकर के अपनी नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि को रखते योगाभ्यास किया जाना चाहिये।

मानव को जैविक उत्पाद से मनोविकसित कर पूर्णता प्रदान करने के लिए अर्थात अच्छे ढंग से समाजीकरण करने के लिए सामाजिक अभिकरणों के द्वारा योग अपनाना भारत की प्राचीन परंपरा का एक अनमोल उपहार है यह आत्मा और शरीर की एकता का समन्वय है पुरुष और प्रकृति के बीच का सामंजस्य और संरक्षण है तथा संपूर्ण मानवता के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पूरे विश्व हेतु (भारत को छोड़कर क्योंकि यह सनातन संस्कृति ही इसका उदगम है) कल्याणकारी है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टय कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।। [9]
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवव तिष्ठते।
नि:स्पृह सर्व कामेभ्यो युक्त इतउच्यते तदा।। [10]

अर्थात हर प्रकार के दुखों को नाश करने वाला जो यथायोग्य आहार बिहार करने वाला हो कर्म में यथा योग्य प्रयास करने वाला हो यथायोग्य समय से सोने वाला हो और जागने वाला हो जिसका चित्त पूर्ण रूपेण उसके बस में हो जो काल और परमात्मा में भली-भांति अपने को समर्पित कर दिया हो वह संपूर्ण भोगों और इच्छा रहित पुरुष ही योगी कहा जाता है। और अंततः वह सम्पूर्ण प्राणियों में मुझे अर्थात वासुदेव को ही देखता है जब यह भाव आ जाता तब वह असली योगी कहलाता है।

पूरी दुनिया के नवाचार है योग परन्तु भारत का प्राच्य दृष्टिकोण है योग, जिस प्रकार पर्यावरण और पृथ्वी जे साथ अन्याय हो रहा है मानव, मानव का दुश्मन अपने स्वार्थबस बना हुआ है, लगातार युद्ध की विभीषिका बढ़ रही रही है, त्याग की भावना शून्य हो रही है सब कुछ पा लेने की असीम लिप्सा सबको घेर कर पूरी वसुधा में अशांति पैदा कर रही है ऐसे में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के प्रस्ताव पर 11 दिसंबर 2014 को संयुक्त राष्ट्र में सर्वसम्मत से 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में सम्पूर्ण विश्व से स्वीकृति मिल चुकी है। हम भारत की इस योग परंपरा को मानवता के उद्धार के लिए और संपूर्ण वसुधा के कल्याण के लिए अपना कर एक नई मिसाल प्रारंभ कर सकते हैं श्रीमद् भागवत गीता में कहा गया है"आररुक्षरमुनेरयोग: कर्मकारण मुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव श्रम:कारण मुच्यते।। [11] अर्थात योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले सतत मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति हेतु अपने लिए निष्काम भाव से कर्म करना ही श्रेयसकर होता है इस प्रकार योग आरूढ़ हो जाने पर अपने सभी सर्व संकल्पों का व्यक्तिगत तौर पर अभाव हो जाता है और लोक कल्याण हेतु वह समर्पित हो जाता है,क्योंकि निरापद भाव ही मन की असली शांति है,इस भाव से

जो सुख प्राप्त होगा वह शाश्वत अक्षय और आम जन हेतु अलभ्य होगा ,यही हमारे मनीषियों की कामना थी यही परम जीवनोद्देश्य भी है,इसी कारण आज सम्पूर्ण विश्व योग के महत्व को समझकर इसे अपना रहा है।

संदर्भ

1. अथर्व वेद 18/8/2
2. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 2 श्लोक31
3. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 2 श्लोक32
4. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 2 श्लोक 49
5. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 2 श्लोक 54
6. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 3 श्लोक प्रथम
7. पतञ्जलि योग दर्शन अध्याय 3 श्लोक 3
8. श्रीमद्भगवगीता अध्याय 6 श्लोक 11
9. श्रीमद्भगवगीता अध्याय 6 श्लोक 17
10. श्रीमद्भगवगीता अध्याय6 श्लोक 18
11. श्रीमद्भगवगीता अघ्याय 6 श्लोक 3